RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal
(RHIMRJ)

हिन्दी कहानियों में आधुनिक संस्कृति एवं नारी स्वातंत्र्य

डॉ. प्रभा शर्मा

सह आचार्य – हिंदी विभाग राजकीय कला कन्या महाविद्यालय कोटा (राजस्थान)

प्रस्तावना

सांस्कृतिक परिवेश पर विचार करने के पूर्व संस्कृति शब्द का अर्थ एवं शब्द गठन पर विचार करना आवश्यक है। ''संस्कृति'' शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (ड.) कृ ञ धातु से बना है, जिसका मूल अर्थ है परिष्कार करना। व्यापक अर्थ में संस्कृति उस सीखे हुये व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है, संकीर्ण अर्थ में संस्कृति वह गुण है जो व्यक्ति के व्यवहार को परिष्कृत करती है। ये गुण व्यक्ति व समाज को संस्कारों से प्राप्त होते हैं। दिनकर जी ने संस्कृति की परिभाषा देते हुये कहा–''संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है, यह एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य – स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग युगान्तर में होता है। जिस प्रकार संस्कृति जन्य गुणों का निर्माण कठिन है, उसी प्रकार इनका नष्ट होना संस्कार भी हजारों साल में निर्मित होते हैं अतएव प्रत्येक देश की संस्कृति भिन्न होती है।'' [1] अमरीकी विद्वान डॉ0 व्हाइट हेड के मत में –''संस्कृति मानसिक प्रक्रिया है और सौन्दर्य तथा मानवीय अनुभूतियों को हृदयगंम करने की क्षमता है।''

नारी की सांस्कृतिक अवधारणा

भारतीय संस्कृति अनेक परम्पराओं व विभिन्न प्रभावों को हृदयगंम करती चलती है, अतः यह पश्चात्य संस्कृति से भिन्न है। हर देश की संस्कृति वहाँ के परिवेश से गठित होती चलती है। इसलिए डॉ0 कमलेश्वर ने भी कहा है कि –''संस्कृति और कुछ नहीं परिवेशगत सच्चाइयों की कोख से जन्मे मूल्य विचारों का संस्कारित रूप है।''

भारतीय संस्कृति व नारी की स्थिति पाश्चात्य नारी से इसलिए भी भिन्न है, क्योंकि यहाँ नारी की दयनीय दशा के हालात सदा से ही ऐसे नहीं रहे हैं, अगर अतीत की ओर दृष्टिपात करें तो प्राप्त होगा कि प्राचीन काल में भी नारी का स्थान ऊँचा रहा है, वहाँ उसकी भूमिका पुरूषों के सहयोगी के रूप में ही रही है, प्रतियोगी के रूप में नहीं। अपितु यह कल्पना की जाती रही है कि विवाह संस्था के स्थापित होने के पूर्व समाज मातृसत्तात्मक ही रहा होगा। हमारे देश की संस्कृति की भाँति शक्ति के रूप में नारी की पूजा इसी तथ्य को स्पष्ट करती है। यहाँ तक की सिन्धु धाटी की सभ्यता में जो मूर्तियाँ (देवी की) प्राप्त हुई हैं, वह इसे सिद्ध करती हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रागैतिहासिक काल में नारी–सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक हर दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी।

वैदिक काल से लेकर देश की स्वतन्त्रता मिलने तक नारी की स्थिति और उसके सांस्कृतिक परिवेश में निरन्तर उतार–चढ़ाव एवं परिवर्तन आते रहे किन्तु अपनी संस्कृति की गरिमा बनाये रखने में नारी ने कभी कदम पीछे नहीं हटाया किन्तु स्वातन्त्र्योत्तर भारत में नारी की भूमिका बदली एवं अपनी स्थिति से उबरने तथा अपनी महत्ता की प्रतिष्ठा करने के प्रति उसमें विद्रोह जागा, उसने जीवन के सभी आयामों का स्पर्श करना चाहा और विकास के विभिन्न गवाक्षों को खोला ताकि युगों की कारा में आबद्ध नारी स्वतन्त्रता की श्वांस ले सके और इसके प्रमाण स्वरूप हमारे कहानीकारों ने नारी की सांस्कृतिक भूमिका एवं औद्योगीकरण, वैज्ञानिक प्रगति, शिक्षा के प्रसार एवं पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप उसके बदलते परिवेश को चित्रित किया।

स्त्री में जो जागरण आया, उससे नारी को अपने खोये अधिकार मिले। उसे मताधिकार, पति की सम्पत्ति में अधिकार एवं नागरिक के सभी अधिकार मिले। उसे तलाक, दहेज एवं उत्तराधिकार सम्बन्धी सभी अधिकार मिलने पर कानूनी तौर पर उसकी स्थिति ठीक होने लगी किन्तु समाज की दृष्टि संकीर्ण ही रही क्योंकि भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण तो हुआ किन्तु कोई सामाजिक क्रान्ति नहीं हुई। फलस्वरूप नारी की स्थिति में कोई खास अन्तर नहीं आया और संघर्ष की स्थिति आज भी बनी हुई है। ''समाज की अलिखित परम्परा में परिवर्तन का कारण उसके सदस्यों की मूल्यात्मक या सांस्कृतिक दृष्टि ही रहती है। दुर्भाग्य से उस मूल्यात्मक दृष्टि का हमारे समाज में अभाव है। विधान में बाल विवाह का निषेध है, समाज में विवाह के लिए उसकी अनिवार्य आवश्यकता है। विधान में स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा के द्वार खुले हैं। समाज उच्च शिक्षित महिलाओं का अविश्वास करता हैं।''[2]

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

सांस्कृतिक परिवेश : विभिन्न संदर्भ

भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी समन्यवादी प्रवृत्ति रही, इसीलिए यह विभिन्न संस्कारों को समय–समय पर आत्मसात् करती चलती है और इन संस्कारों का प्रभाव हमारे देश की नारी पर इतने गहरे रूप में पड़ा है कि समस्त बाह्य प्रभावों, मूल्यों के विघटन, दृष्टि के बदलाव के बावजूद हमारे देश की नारी अन्य देशों की तुलना में आज भी सुसंस्कृत है, उसने पुस्तकीय ज्ञान से नहीं, परम्परा, अनुभवों और संस्कारों से यह संस्कृति अर्जित की है। ''परन्तु जिस नियम से चंदन में अग्नि रह सकती है या तूल जैसी हल्की वस्तु कठिन हो सकती है उसी नियम से अपने शील और सहनशीलता के लिए विख्यात नारी में विध्वंसक विद्रोह जाग उठता है और तब समाज सांस्कृतिक संकट की स्थिति में पहुँच जाता है। यह विद्रोह भारतीय नारी में न स्वातंत्र्य –संग्राम में जागा था और न स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय। यह आक्रोशपूर्ण विद्रोह आज जागा है और इसके अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारण हैं।'' [3]

आक्रोशपूर्ण विद्रोह का यह स्वर हमारी कहानियों में स्पष्टतः सुनाई पड़ता है। घर के दायरे में कैद नारी अब अपने परम्परागत संस्कारों को छोड़कर अपनी अस्मिता की तलाश में बाहर निकल पड़ी है। हिन्दू परिवार में पति की सेवा करने वाली एवं सास–ससुर के संकेत पर नाचने वाली स्त्री अब उससे बाहर अपनी पहचान बनाने को उत्सुक है। इन स्वरों की अभिव्यक्ति मोहन राकेश की –'एक और जिन्दगी' कमलेश्वर की 'कमरा और गली' मन्नू भण्डारी की 'क्षय', 'एक्वाने आकाश नाई, उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ', महीप सिंह की 'सीधी रेखाओं का वृत्त', ज्ञानरंजन की 'सम्बन्ध', 'शेष होते हुये' आदि कहानियों में हुई है।

महानगरीय संस्कृति

उच्च शिक्षा, जीविकोपार्जन एवं बेहतरीन जीवन जीने की ललक में गाँव, कस्बों व छोटे नगरों से जनसमूह महानगर में आकर बसा और महानगर का विशालकाय दैत्य उन्हें निगलता रहा और स्वयं को उपनगरों और कॉलोनियों में विकसित करता रहा जो यहाँ आकर बसे उनके मन और मानसिकता ने महानगर की संस्कृति और परिवेश को सहजता से ग्रहण नहीं किया। फलस्वरूप जो अजनबीपन, मूल्यों के टकराहट की स्थिति उत्पन्न हुई उसके बीच ही आज की नारी को रहने को विवश होना पड़ा। नारी की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए कहानीकारों ने कैनवस के रूप मे कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि महानगरों को लिया, जहाँ जाकर ग्रामीण वं कस्बाई संस्कार एवं जीवन मूल्य एवं चली आती परम्परा चटख जाती है और उस दर्द को लेकर ही जिन्दगी जीने का नाटक करना पड़ता है। कमलेश्वर की कहानियों में नारी का यही रूप चित्रित हैं। ''खोयी हुई दिशाएं'', ''बदनाम बस्ती'', ''दुःख भरी दुनिया'' आदि कहानियों में महानगरीय संस्कृति का वर्णन है। क्लब, होटल, किटी पार्टी, फैशन परेड, सांस्कृतिक गठन, संस्था, गोष्ठियाँ, डाँस बार, डिस्को आदि इसी संस्कृति का हिस्सा हैं। जहाँ गाँव–कस्बों में आस–पड़ौस, मुहल्ला, इलाका एक परिवार के रूप में होता है वहाँ पास रहते हुये भी अजनबीपन एवं अलगाव महानगर की संस्कृति की विशेषता है। जैसा कि ज्ञानरंजन की ''फेंस के इधर और उधर''[4] कहानी में दो परिवारों के सोच–विचार, जीवन–मूल्य, रहन–सहन के स्तर में बड़ा अन्तर है पर इस अन्तर को लांघा नहीं जा सकता क्योंकि बीच में फेंस है।

नगरीकरण की प्रक्रिया से आधुनिकता का परिवेश जुड़ा हुआ है और इस परिवेश में सूनापन, भीड़ में अकेलेपन का अहसास तथा व्यस्तता का आभास है। अन्विता अग्रवाल की ''अंधेरे में'',''कटी हुई तारीखें'' में यही अहसास है। एक वर्ग उस नारी का है जो अपने पिता के मृत्युपरान्त परिवार का एकमात्र आश्रय है और ''तनाव से लेकर तृप्त हुये जानवरों''[5] की अंधाधुन्ध भीड़ वाले महानगर की विभिषिका से त्रस्त है। यहाँ स्थितियों की जकड़न है और एक स्थिति से उबर पाने की कोशिश में दूसरी स्थिति के दलदल में धँसते जाने की पीड़ा है। अब नैतिक – अनैतिक की तुच्छ बातों से बढ़कर नारी के समक्ष अस्तित्व का संघर्ष है। कोई आदर्श या महानता का शहीदाना गौरव नहीं। वह नौकरी पेशा नारी है, सेक्स उसकी नियति है और समर्पण उसकी विवशता है।''[6]

धार्मिक, नैतिक सन्दर्भ और नारी

विज्ञान द्वारा आविष्कृत भयावह यन्त्रों के शोरगुल में धर्म, ईश्वर, आस्था एवं विश्वास जैसी कोमल भावनायें दब गयी हैं। भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में जहाँ सारे कार्य–कलाप धर्म से ही संचालित होते थे, अब धर्म एक संकीर्णता के पर्याय के रूप में ही है, विश्वास एवं दृष्टिकोण की व्यापकता के रूप में नहीं। आज का व्यक्ति चाहे पुरूष हो या नारी, उसका अपना व्यक्तित्व पहले है, ईश्वर का बाद में। उसे परलोक पर विश्वास नहीं वह तो इहलोक को ही जीना चाहता है। तभी मन्नू की नायिका लूसी कहती है–'' मैं, अपनी जिन्दगी को, अपने इस रूप को चर्च के दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूँगी। मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ, आदमी की तरह जिन्दा रहना चाहती हूँ। मैं चर्च में घुट–घुट कर नहीं मरूँगी .... मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी।''[7] यह नास्तिकता, यह अविश्वास हमारे पूरे समाज और संस्कृति को ही आच्छादित कर गया हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि संस्कार जो गहरी

छाप छोड़ते हैं, इतनी जल्दी नहीं मिट सकते। तभी राजेन्द्र यादव की 'मजाक' कहानी का एक पात्र नायिका से कहता है –''खड़ी क्या है, जाकर भगवान को एक प्रार्थना कर बुद्धू, तू नहीं जानती तेरे ऊपर आई कितनी बड़ी मुसीबत का उन्होंने टाल दिया है।'' [8] कमलेश्वर, ज्ञानरंजन, राजेन्द्र यादव, सुधा अरोड़ा आदि सभी कहानीकारों ने ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव प्रदर्शित किया है। इसका कारण यह है कि आज अध्यात्मवादी दृष्टिकोण की जगह भौतिकवादी और उपयोगितावादी दृष्टिकोण ने ले ली है। इसका श्रेय औद्योगीकरण एवं पाश्चात्य प्रभाव को है।

विवाह पूर्व प्रेम और काम सम्बन्ध

विवाह पूर्व का प्रेम स्वप्नों की भाँति कोमल एवं भावुक होता है। कठोर धरती पर स्पर्श उसे नहीं होता, अतः यह रोमानी होता है। उसमें वादे होते हैं, भविष्य के लिए संजोये सपने होते हैं और जब इस प्रेम पर कुठाराघात होता है तो कुछ नारियाँ 'परिन्दे' की लतिका की तरह अतीत की स्मृति में ही जीती हैं जो स्थिति को सहजता से स्वीकार नहीं कर पातीं तो कुछ में प्रेमिकायें बीते प्रेम को भुलाने की कोशिश में सफल होकर वर्तमान पति से भावना एवं देह के स्तर पर अधिक धनिष्ठ हो जाती हैं, जैसे राजेन्द्र यादव की 'मेरा तन मन तुम्हारा है' की नायिका विवाह पश्चात् प्रेमी को झूठी सान्तवना देती है।

बट्रेण्ड रसेल ने लिखा है कि 'धर्म और परलोक के शिकंजे से मुक्ति और गर्भ निरोधक विधियों ने स्त्री–पुरूषों के सम्बन्धों में भीषण संक्रान्ति पैदा कर दी है। अब सैक्स की नैतिकता धाराशायी हो गयी है।''[9] प्रेम वासना का अस्तित्व मोहन राकेश की कहानी 'वासना की छाया में', निर्मल वर्मा की 'लवर्स,' नरेश मेहता की 'वर्षा भीगी', सुधा अरोड़ा की 'एक सेन्टीमेन्टल डायरी की मौत' में चित्रित है। सैक्स एक अनिवार्य नियति है, इसमें कोई पाप बोध आज की नारी अनुभव नहीं करती इसीलिए 'निश्चय' कहानी की नायिका अपने कुकृत्य पर लज्जित नहीं होती और उसे कोई 'आत्मग्लानी' नहीं होती। वह कुण्ठाओं से परे उन्मुक्त है। विवाहित हो या अविवाहित, नर–नारी की अपनी निजी प्रकृति है जो परम्परागत सामाजिक मान्यताओं की परवाह मुश्किल से करती है, रोकने पर या तो रोक को तोड़ देती है या स्वयं टूट जाती है। ''[10]

विवाह पूर्व सैक्स सम्बन्धों को लेकर 'ज्ञानरंजन की 'छलांग' ममता कालिया के 'दो जरूरी चेहरे', विवेकी राय की 'गोता' सुधा अरोड़ा की 'मरी हुई चीज' उषा प्रियंवदा की 'सम्बन्ध' आदि कहानी लिखी गई है। इसका एक कारण यह है कि सामाजिक विषमताओं व परिस्थितियों के हाथ विवश होकर जब समयानुकूल कोई मनपसन्द जीवनसाथी नहीं मिल पाता तो देह की मांग तो निरन्तर कचोटती है और विवाह न कर सकने की मजबूरी में विवाह पूर्व काम सम्बन्ध की स्थिति पैदा हो जाती है। क्योंकि आर्थिक रूप से आज की अधिकतर नारी स्व–निर्भर होने के कारण प्रतिकूल जिस किसी भी पुरूष के साथ बंध जाने की स्थिति से मुक्त हैं।

''आधुनिक समाज में स्त्री–पुरूष सम्बन्धों का एक स्तर वह है, जहाँ संयोग के शारीरिक सुख की तृप्ति के लिए सामाजिक बन्धनों को चुनौती दी जाती है। दूसरा स्तर वह है जहाँ स्वावलम्बी स्त्री–पुरूष बिना किसी कानूनी सम्बन्ध के यौन मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। नारी और पुरूष के सम्बन्ध अब अजनबी या विलक्षण नहीं अपितु बहुत सहज, स्वाभाविक एवं यथार्थ बन गए हैं। आधुनिक नारी केवल नारी है, पुरूष की चिंता में जल कर मर जाने वाली सती नहीं है और न उन्मुक्त सैक्स को अर्थाजन का साधन बनाने वाली वेश्या ही है।'' [11]

विवाहेतर काम सम्बन्ध

पति, पत्नी एवं प्रेमी के त्रिकोण को विषय बनाकर भी कई कहानियाँ लिखी गई हैं, जहाँ पत्नी किसी भी कारण से पति से इतर पुरूष प्रेमी से यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। आरम्भिक रूप में ये सम्बन्ध भावनात्मक होते हैं पर घनिष्ठता की प्रक्रिया से ये सम्बनध सैक्स के धरातल पर भी स्थापित होते हैं किन्तु पति से इतर पुरूष से सम्बन्ध सिर्फ सैक्स की धुरी पर ही नहीं बनते, यह विवाहित जीवन से असंतुष्टि एवं उसकी निर्थकता को भूलकर किसी का प्यार एवं आकषर्ण पाने की चाह में ही बनते हैं, इसके लिए या तो पूर्व प्रेमी की ओर आकर्षण बढ़ता है, जैसे निर्मल वर्मा की 'अंधेरे में' ओर 'जो लिखा नहीं जाता' में। कुछ स्त्रियाँ जो पति से भी मुक्त होना नहीं चाहती और सिर्फ एक राहत पाने के लिए ही इतर सम्बनध रखती हैं जैसा उषा प्रियंवदा की 'सागर पार का संगीत' की देवयानी पति की अनुपस्थिति में उसके भाई से सम्बन्ध बनाती है। कृष्ण बलदेव वैद की 'त्रिकोण' में पत्नी के इतर सम्बन्ध को पति एवं स्वयं पत्नी भी बड़ी सहजता से ग्रहण करते हैं। मोहन राकेश की 'सेफ्टी पिन' में इसी तरह बिना किसी ग्लानि या बोध के इन सम्बन्धों को निभाया है।

''पहली दृष्टि से देखें तो विवाह सम्बन्धी खोखलेपन को उजागर करने वाली कहानियाँ यथेष्ट मात्रा में लिखी गईं। विवाह को पवित्र बंधन कहकर उसके द्वारा संरक्षण एवं निर्वाह के नाम पर स्त्री के शोषण का माध्यम माना है। जिस विवाह के लिए नारी गौरी–पूजा आदि करके मनौतियाँ मनाती थी कि उसे अपने जन्म–जन्म के पुरूष से मिला दिया जाये, उसी विवाह संस्था को आज कहानी में एक दम व्यर्थ, मात्र औपचारिकता और छल के रूप में घोषित किया गया। ''[12] जगदीश चतुर्वेदी की 'फ्लर्ट' 'सुदर्शन चौपड़ा की 'स्वीकारान्त', माहेश्वर की 'बन्द' आदि अनेक कहानियों में विवाह संस्था की परम्परा से हटकर वास्तविकता के धरातल पर झांका गया है।

संस्कारों के प्रति विद्रोह – '' हिन्दू विवाह की पूर्णता धार्मिक कृत्यों यथा–होम, पाणिग्रहण, सप्तपदी आदि अनेक पवित्र कार्यों के द्वारा मन्त्रोच्चारण के साथ, अग्नि को साक्षी कर धार्मिक संस्कार के रूप में की जाती रही है। गोत्र, प्रवर, सपिण्ड आदि से बाहर विवाह में हिन्दू आस्था रखते हैं।'' [13] इन संस्कारों को भले ही विवाह के समय या समाज में लोक–दिखावे के कारण पूर्ण किया जाता हो, किन्तु इनके प्रति सम्मान व स्वीकृति आज की पीढ़ी मे समाप्त हो चुकी है। महज खाना पूर्ति एवं आडम्बर के रूप में ही यह पूर्ण होती है। कहानियों में इससे भी आगे बढ़ा हुआ कदम मिलता है जैसे जगदीश चतुर्वेदी की 'सेन्टीमेन्टल गर्ल' नामक कहानी में परिणय की भावंरों को 'सात बेहूदा चक्कर' और सर्तात्व, सम्मान और पातिव्रत्य को विवाह की चाहरदीवारी में कैद होना कहा गया है।

नारी की विभिन्न भूमिका

नारी गृहिणी के रूप में, –हमारी परम्परा ने पुरूष के हिस्से में बाहर और नारी के हिस्से में घर दिया है, अतः घर की चाहरदीवारी के मध्य आने वाली सभी जिम्मेदारियों का निर्वाह स्त्री करती है और वह गृहिणी कहलाती है। यद्यपि स्त्री स्वातंत्र्य के इस युग में नारी ने चाहर दीवारी से बाहर कदम रखा है, अपने व्यक्तित्व को संवारा–निखारा है तथापि घर का क्षेत्र उससे किसी भी रूप में नहीं छूटा। अभी भी घर का समस्त दायित्व उसी के जिम्मे है। जो नौकरीपेशा नहीं हैं उनका तो सारा समय ही घर–गृहस्थी के कार्यों में बीतता है और जो नौकरी पेशा हैं, उन्हें दोहरे दायित्व एवं बोझ को वहन करना पड़ता है। दोनों ही रूपों में स्त्री गृहिणी ही रहती है, कुछ तो संस्कारों का प्रभाव कि स्त्री–मन यह स्वीकार कर ही नहीं पाता कि पुरूष उसके बच्चों का लालन–पालन करे या घर की सफाई या मेहमाननवाजी या खाना पकाये। अतः प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में स्त्री के गृहिणी रूप को नकारा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त स्त्री आखिर स्त्री है, सदियों से मिले अपने अधिकार क्षेत्र 'घर' के मोह को वह नहीं छोड़ सकती। पुरूष की तलाश में भी घर की ही तलाश होती है। तभी 'तीसरी हथेली' की नायिका मंदी के भी यही विचार हैं –''पुरूष के लिए प्यार का क्षण महत्वपूर्ण है, जबकि स्त्री के लिए एक आंशिक तृप्ति, क्योंकि प्यार उसके लिए 'एक घर' होता है, एक समाज, एक बचाव, बच्चों से चहकता–महकता एक आंगन, समय का हस्तक्षेप इस सारे समीकरण को उघाड़ कर रख देता है।''[14]

नारी पत्नी के रूप में

नारी जागरण के युग में सर्वाधिक परिवर्तन नारी के पत्नी के रूप पर पड़ा। जहाँ हमारी परम्परा ने सीता, सावित्री, गांधारी, द्रोपदी जैसी सती नारियों की गाथा सुनकर हमें नारी के पातिव्रत धर्म के उपदेश एवं संस्कार दिये, वहीं दूसरी ओर वर्तमान परिस्थिति में नारी दिनों दिन अपनी स्वतन्त्र अस्मिता एवं अधिकार के प्रति जागरूक होती जा रही है क्योंकि पत्नी की पति से स्वतन्त्र सत्ता और भूमिका भी संभव है। अब पत्नी सिर्फ नारी का धर्म ही नहीं है वरन् सिर्फ एक भूमिका मात्र है। इस जागरण से पुरूष के एकद्त्र साम्राज्य की नींव अब डगमगाने लगी है इसे पुरूष चाहे हंसकर स्वीकार करे या दुःखी होकर, चाहे समर्थन करे या विरोध। पर अब उसे भी किन्हीं अपवादों को छोड़कर पत्नी के व्यक्तित्व को मानकर चलना ही पड़ता है। अगर देखा जाए तो एक तरह से पत्नी अब सच्चे अर्थों में पति की सहगामिनी बन सकी है, अभी तक तो वह दासी थी। अब वह पति के पेशे, व्यवसाय को जानती है, उसकी रूचियों, महत्वाकांक्षाओं के प्रति जागरूक है, यहाँ तक कि अब वह पति को आर्थिक रूप से भी सहयोग देती है।

नारी का मातृत्व रूप – नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व में है। नारी के सभी परम्परागत रूपों पर आधुनिक परिस्थितियों ने प्रभाव डाला, उसकी भूमिकाओं में बदलाव आया किन्तु उसका मातृत्व रूप शाश्वत् हैं। माँ बनने की ललक और उसके द्वारा जीवन की पूर्णता की उपलब्धि से नारी को वंचित नहीं किया जा सकता। वह शिक्षित हो, आधुनिक हो, फिर भी ममता के बंधन में बंधना चाहती है, वरन् संघर्ष भी करती है। मृदुला गर्ग की कहानी 'मेरा' में नारी के इसी ममत्व, कर्तव्य, परिस्थिति, अधिकारों एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति का परस्पर द्वन्द्व है। पति अपनी अपूर्ण महत्वाकांक्षाओं के कारण अपने ही संतति बीज को नष्ट करना चाहता है जबकि मीना उस अनुपम निधि को सहेजे रखना चाहती है। ''पुरूष तो अपने निर्णय थोप सकता है अपने कारणों या मजबूरियों से, पर क्या गर्भ धारण करने वाली, अपने शरीर के रक्त–मांस से जीवन रचना करने वाली नारी, उतनी निर्वेयक्तिता से उससे अपना पीछा छुड़ा सकती है .... उससे अपने आपको मुक्त कर लेने की स्थिति में स्वीकार कर पाती है।'' [15] पुरूष

से छुटकारा पाने की स्थिति में मीना भी यही सोचती है कि ''महेन्द्र के दिल में सिर्फ तर्क ही तर्क है, भावना वहाँ है ही नहीं। अगर ऐसा है तब तुम जीवित ही नहीं हो। वह मेरा है, सिर्फ मेरा। ''[16]

नारी और शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में आज नारी और पुरूष दोनों ही समानता के स्तर पर विद्यमान है। हमारी पूर्व परम्परा में भी स्त्रियों के लिए धार्मिक, नैतिक और फिर परिवर्तन के साथ व्यावसायिक शिक्षा आवश्यक थी किन्तु परवर्ती काल में स्त्रियों का घर से बाहर निकलना बन्द करने के साथ ही शिक्षा से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। सिर्फ पत्र लिखने व नाम लिखने को ही उसकी शिक्षा मान लिया गया था, कभी–कभी तो वह भी नहीं। गांवों या एक हद तक शहरों में आज भी यही हालत है, किन्तु जागरूक वर्ग में अवश्य शिक्षा का प्रसार बढ़ा है। आज तो नारी तकनीकी, व्यवसायिकी, चिकित्सा, इंजीनियरिंग और राजनीति आदि हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है।

स्त्री की शिक्षा का पुरुष से ज्यादा महत्वपूर्ण स्थान है। पुरूष की शिक्षा उसके रोजगार एवं पेश से जुड़ी है जो व्यापक हित के लिए है, जबकि स्त्री की शिक्षा पहले स्वंय, फिर बच्चों, फिर परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए समान रूप से हितकारी है। स्त्री की शिक्षा अपने घर–परिवार के लिए एक संस्कार नीति और परम्परा का निर्माण करती है।

मूल्यों का द्वन्द्व

स्वतन्त्रता के पूर्व जिन पारम्परिक मूल्यों को स्थापित करने के लिए लोगों ने प्राणपण से चेष्टा की, स्वतन्त्रता के उपरान्त कुछ वर्षों बाद इन मूल्यों की महत्ता क्षीण होती गई। सामान्य जन मानस ने यह अनुभव किया कि प्रबुद्ध बुद्धिजीवी राजनीतिक गतिविधियों के सूत्रधार वर्ग जो कि इन मूल्यों के आदर्श थे, उन्होंने ही इन मूल्यों को एवं उनकी परम्परा को तोड़ने का प्रयास किया। ''इस निर्मम सत्य के उद्घाटन के साथ–साथ इन चिन्तकों, विचार कों, लेखकों आदि ने यह भी अनुभव किया है कि या तो शायद वे मूल्य–आर्दश, जिन पर उनकी नींव रखी गई थी, अपने आप में खोखले थे अथवा उनका निर्वाह कर पाने की क्षमता बदलते युग और नई मान्यताओं वाले परिवेश में उतनी नहीं रह गई थी।''[17]

इस मोह भंग की स्थिति ने एक आक्रोश, असंतोष, विद्रोह, कुंठा एवं द्वन्द्व की स्थिति को जन्म दिया, साथ ही 'पीढ़ी अन्तराल' (जनरेशन गैप) को भी। पुरानी पीढ़ी तो इन मूल्यों में आस्था–अनास्था के बीच झूलती रही, किन्तु नयी पीढ़ी पूरी तरह अनास्थावादी एवं विद्रोही रही। 'टूटना' कहानी में राजेन्द्र यादव ने किशोर एवं लीना में सम्बन्धों के मोह के हटने का कारण वर्गगत असमानता दिखाया है। लीना व किशोर दोनों के आदर्श एवं संस्कारगत मूल्य भिन्न हैं। दोनों आपस में 'एडजस्ट' नहीं कर पाते। मूल्यों के अस्वीकार का स्वर रामदरश मिश्र की कहानियों में भी है जिसमें नारी पुरूष के प्रति समाज की पक्षपातपूर्ण दृष्टि के प्रति प्रश्नाचिह्न लगाया गया है।

आधुनिक संस्कृति और नारी स्वातन्त्र्य

आज जिस पश्चात्य जीवन पद्धति, फैशन, हिप्पी संस्कृति, विडियो, ब्ल्यू फिल्म, पार्टी, कैबरे आदि के चकाचौंध के पीछे दुनिया भाग रही है, उसने यद्यपि हम भारतीयों को पाश्चात्य रहन–सहन स्तर को अपनाकर उनके समक्ष बनने का भ्रम जरूर दिया हो, किन्तु संयम, शांति, अनुशासन एवं शालीनता जो हमारी संस्कृति की विशेषता रही, उसे मलिन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पुरूष तो पुरूष, नारी भी दिग्भ्रमित होकर अपने चारों ओर पाश्चात्य ऊब, घुटन, युवा आक्रोश या प्रतियोगिता का भ्रमित संसार रचकर क्लब, चरस, भांग की गोली, स्मैक, हेरोइन आदि नशीली दवाओं की गुलाम बन रही है।

हमारी संस्कृति ने नारी को स्वतन्त्रता नहीं दी, यह उसकी ज्यादती थी, किन्तु यह स्वतन्त्रता नारी को मिलने लगी तो कुछ ने अपने संस्कारों को भूलकर स्वतन्त्रता का दुरुपयोग किया। मृदुला गर्ग की ''कितनी कैदें'' कहानी इस अत्याधिक मॉड संस्कृति एवं आधुनिकता का खाका खींचती है।

आधुनिक जीवन में नवीन एवं परिर्वतनशील दृष्टि से मुक्त हर स्त्री धर्म, विवाह, परिवार, दाम्पत्य, पीढ़ी अन्तराल, परम्परागत–संस्कार, रीति–रिवाज, शिक्षा एवं स्वातन्त्र्य सभी पहलुओं में अपने आपको बदला हुआ पाती है। वह अपने प्राचीन संस्कारों को अपनाकर भी नवीन आयायों को लेकर चल रही है एवं इस कोशिश में कहीं तो अपने आपको सधा हुआ महसूस करती है, तो कहीं दोनों संस्कारों का मूल्यांकन करती हुई 'अनएडजस्टमेन्ट' की स्थिति में पाती है। सब कुछ मिलाकर उसका परिवेश, उसके परिवार, माता–पिता एवं जातिगत संस्कार, शिक्षा तत्पश्चात् आवश्यकता, परिस्थितियों एवं विवाह पश्चात् पति एवं उसके परिवार से सांमजस्य करने की स्थितियों एवं महत्वाकांक्षाओं या आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनाये गये कॅरियर एवं उसकी मांगों के अनुसार वह एक मिले जुले सांस्कृतिक माहौल में जी रही हो, जिसे किसी परिभाषा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है और यही आज के समय की मांग है।

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)

सन्दर्भ

1. संस्कृति के चार अध्याय–दिनकर, पृ. 652
2. मेरे प्रिय संभाषण – महादेवी वर्मा, पृ. 55
3. मेरे प्रिय संभाषण – महादेवी वर्मा, पृ. 55
4. फेंस के इधर उधर– ज्ञानरंजन की प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ. 22
5. खामोशी को पीते हुये –निरूपमा सेवती (टुच्चा) पृ. 46
6. साठोत्तरी महिला कहानीकार – सं. मधु सन्धू, पृ. 68
7. ईसा के घर इन्सान – मैं हार गई – मन्नू भण्डारी, पृ. 25
8. मजाक – मेरी प्रिय कहानियाँ – राजेन्द्र यादव, पृ. 39
9. विवाह और नैतिकता (बट्रेण्ड रसेल) अनु. धर्मपाल, पृ. 82
10. हिन्दी कहानी का आठवां दशक – मधु उप्रेती, पृ. 104
11. कहानी की संवेदनशीलताए–सिद्धान्त और प्रयोग–डॉ0 भगवानदास वर्मा, पृ. 201
12. समकालीन कहानी : रचना मुद्रा – डॉ0 पुष्पपाल सिंह, पृ. 45–46
13. उपन्यास का समाजशास्त्र – वी.डी. गुप्ता, पृ. 121
14. साठोत्तर महिला कहानीकार – सं. मधु सन्धु, पृ. 143
15. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य–मूल्यों से प्रयाण–सिन्हा और सिन्हा, पृ. 155
16. मेरा डेफोडिल जल रहे हैं – मृदुला गर्ग, पृ. 77
17. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य– मूल्यों से प्रयाण, सिन्हा और सिन्हा पृ. 6